UGC Approved Journal

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED

ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 01 | January – March 2018

वैदिक काल मे चतुर्वर्ण का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 हिमांशु पण्डित
असिस्टैण्ट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने सामयिक आवश्यकता को दृष्टिगत करते हुए समाज का वर्णगत नियोजन किया था। प्रत्येक व्यक्ति स्ववर्णान्तर्गत होकर निर्दिष्टि सामाजिक व्यवस्था का अनुपालन करे इस हेतु समाज को चार वर्णों मे नियोजित किया गया था। सर्वप्रथम ऋग्वेद मे इस व्यवस्था के दर्शन होते हैं। तद्नुसार विराट पुरुष के मुख, बाहु, उरु तथा पैरों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की उत्पत्ति हुई थी।(1)

अपने मूल रुप मे वर्ण–व्यवस्था पूर्णरुपेण कर्मणा थी। जिसका अर्थ है कि प्रारम्भिक तौर पर कर्म की ही महत्ता थी। परिणामस्वरुप सभी वर्णों का समाज मे यथेष्ट सम्मान एवं स्थान था। सभी वर्ण भी अपने लिए निर्दिष्ट कर्मों को पूरी निष्ठा तथा मनोयोग से करते थे। किन्तु शनैः शनैः समाज की बदलती हुई परिस्थितियों तथा सामयिक आवश्यकताओं के चलते वर्णों की सामाजिक स्थितियों मे भी परिवर्तन आने लगा। कभी ब्राह्मण समाज मे सर्वोच्च प्रतिष्ठित हो गए तो कभी क्षत्रियों ने सर्वोच्चता के लिए संघर्ष किया। कहने का आशय यह कि प्राचीन भारत मे चारों वर्णों की स्थितियाँ काल एवं परिस्थितियों के परिवर्तन से निरन्तर परिवर्तित होती रही।

ऋग्वैदिक काल मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों का बहुत ही सुनियोजित सामाजिक ढ़ाँचा तैयार किया गया था। सभी वर्ण अपने लिए निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का पूरी तन्मयता से पालन किया करते थे। यहाँ **ब्राह्मण** शब्द का अनेकशः प्रयोग किया गया है।(2) जिस प्रकार के प्रयोग ब्राह्मणों के लिए किए गए हैं, ऐसा स्पष्ट होता है कि यज्ञ, मंत्र, प्रार्थना आदि कार्यों मे संलग्न रहने वाले वर्ग को ब्राह्मण वर्णान्तर्गत स्वीकार किया गया था। संदर्भित काल मे ब्राह्मण किसी भी व्यवसाय को अपना सकता था। वह इच्छानुसार कर्म कर सकता था। एक स्थल पर आया भी है कि ''मै कारु (मन्त्रद्रष्टा) हूँ, मेरे पिता भिषज (वैद्य) तथा मेरी माता उपल–प्रक्षिणी (अनाज पीसने वाली) हैं।''(3) स्पष्ट है कि इस समय कर्म का महत्त्व था जन्म का नही। आनुवंशिकता अब तक व्याप्त नही हुई थी। वशिष्ठ ब्राह्मण थे किन्तु उनकी माता उर्वशी अप्सरा थीं, जबकि पिता मित्रा–वरुण।(4)

क्षत्रिय शब्द का प्रयोग भी बहुतायत मे मिलता है।(5) क्षत्र या क्षत्रिय शब्द का प्रयोग कहीं देवताओं की उपाधि तो कहीं राजा के रुप मे भी हुआ है।(6) क्षत्रियों को प्रायः शूरता एवं वीरता प्रदर्शित करने वाले एक ऐसे वर्ग के रुप मे देखा जाता था जिनका कार्य विरोधियों से युद्ध करके अपने निवासियों के भू–क्षेत्रों की रक्षा करना होता था। ऐसे ही शौर्यवान लोग देवताओं एवं राजाओं की श्रेणी मे सम्मिलित किए जाते थे।(7)

पुरुष सूक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद मे अन्यत्र कहीं भी **वैश्य** शब्द का प्रयोग नही मिलता है। वरन् विश् शब्द का प्रयोग ही मिलता है। वस्तुतः यह वर्ग आर्यों का सामान्य जन समुदाय था जो समाज के विभिन्न व्यवसायात्मक कार्यों मे रत् रहता था। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय की तुलना मे यह वर्ग कोई बहुत महत्त्वपूर्ण वर्ग नही था। वैश्य अभी समाज मे अपना स्थान बना रहे थे।

इस काल मे **शूद्र** का भी समाज मे स्थान था। ऋग्वेद मे शूद्रों का उल्लेख केवल एक बार हुआ है। यह उल्लेख भी पुरुष सूक्त मे है। विराट पुरुष के पैरों से इनकी उत्पत्ति मानी गई है।(8) यद्यपि शूद्रों की उत्पत्ति पैरों से मानी गई थी किन्तु फिर भी इसका अर्थ यह कदापि नही था कि शूद्रों का स्थान समाज मे चौथा था। वास्तव मे विराट पुरुष के विभिन्न अंगों से उत्पत्ति का आशय मात्र समाज शरीर को चलाने के लिए व्यवस्था बनाने से था। इस रुप मे सभी वर्ण अपने–अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण थे। कालान्तर मे प्रचलित हुई अस्पृश्यता आदि जैसी सामाजिक कुरीति अब तक प्रचलन मे नही आ पाई थी। इसका प्रमाण है ऋग्वेद का वह उल्लेख जहाँ बल्बूथ नामक शूद्र से एक ब्राह्मण सौ गायों का दान प्राप्त करता है।(9) स्पष्ट है कि इस समय तक शूद्रों

ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 01 | January – March 2018

द्वारा दिए गए दान को ब्राह्मणों द्वारा ग्रहण किया जाता था। शूद्रों के प्रति सदाशयता और सद्भाव मे अन्य वर्णों की अपेक्षा कोई अन्तर नही था और वर्ण के रुप मे इनकी महत्ता किसी भी प्रकार से कम नही थी।

इस प्रकार यह स्पष्टतः दिखाई पड़ता है कि ऋग्वैदिक मान्यताओं मे चारों वर्णों के मध्य कोई विभाजक रेखा नही थी। सभी वर्ण समाज मे अपनी–अपनी भूमिका का निर्वहन् समान रुप से कर रहे थे। सब की भूमिका पृथक–पृथक होने के बाद भी सबकी महत्ता समान थी। किन्तु समय परिवर्तन के साथ–साथ इन परिस्थितियों मे भी परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए।

उत्तरवैदिक काल मे चारों वर्णों के मध्य स्पष्ट विभाजक रेखा दिखाई देने लगती है। वस्तुतः यही समय चतुर्वर्ण के विकास का युग था और यही इसके विस्थापन का काल भी था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का उल्लेख अथर्ववेद मे मिलता है।(10) इस काल मे ऐसे भेदपरक दिशा–निर्देश चारों वर्णों के लिए जारी कर दिए गए थे कि तुलनात्मक दृष्टि से चतुर्वर्ण का प्रभाव एवं सामाजिक स्थान पृथक–पृथक हो गया था।

ब्राह्मण का महत्त्व इस युग मे आकर बहुत अधिक बढ़ गया था। वह समाज मे सर्वश्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर चुका था।(11) ब्राह्मण को दिव्य वर्ण स्वीकार किया जाने लगा था।(12) चूँकि सभी देवताओं का निवास ब्राह्मण मे ही माना गया अतः स्वाभाविक रुप से उसे स्वयं ही देवता मान लिया गया।(13) ब्राह्मण की सुख–सुविधाओं का विशेष ध्यान रखा जाता था। अथर्ववेद मे कहा गया है कि जिस राज्य मे ब्राह्मण को कष्ट मिलता है उस राजा का राज्य जल मे टूटी हुई नौका के समान नष्ट हो जाता है।(14) ब्राह्मण अपने ज्ञान, बुद्धि–बल, धार्मिक कृत्यों, मंत्रों आदि के कारण अपनी स्थिति को महत्त्वपूर्ण बनाए हुए था। ऐतरेय ब्राह्मण मे यह उल्लिखित है कि पुरोहित के बिना अर्पित की गई आहुतियाँ देवता भी स्वीकार नही करते।(15) राजसूय जैसे क्षत्रिय प्रधान यज्ञ भी ब्राह्मणों की स्तुतिगान के बिना सम्पूर्ण नही होते थे।

ब्राह्मणों की स्थिति इतनी महत्त्वपूर्ण थी कि ऐसा माना जाता था कि ब्राह्मणो द्वारा प्रदत्त सत्ता से ही राजा शासन किया करता था।(16) ब्राह्मणों को सभ्यता का प्रकारक माना गया है। अपने ज्ञान एवं आचरण से ब्राह्मण समाज के उत्थान मे अपना अद्वितीय योगदान दिया करता था। यही कारण था कि ब्राह्मणों को अनेकानेक विशेषाधिकार दिए गए थे। उनकी हत्या जघन्य अपराध मानी जाता था जिसके त्राण के लिए प्रायश्चित विधान भी बहुत कठोर हुआ करते थे।

उत्तरवैदिक काल मे **क्षत्रिय** वर्ग को राजकुल से सम्बद्ध बताया गया है।(17) युद्धकौशल, प्रशासनिक दक्षता आदि इनके मुख्य गुण थे। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि इस युग मे राजा शासन मे ही नही अपितु धर्म–दर्शन आदि मे भी निपुण होते थे। वे उच्च कोटि के शिक्षक, दार्शनिक, चिन्तक, विद्वानों के आश्रयदाता एवं बौद्धिक गवेषणाओं के सुविज्ञ होते थे जिन्होने विद्या एवं शिक्षा कि क्षेत्र मे अभूवपूर्व उपलब्धियाँ अर्जित कीं थीं।

इस तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय मे क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के दार्शनिक पक्ष एवं तार्किक बुद्धि की स्थिति को समझते हुए समानता की ओर अग्रसर होकर दार्शनिक अन्वेषण भी किया। पौरोहित्य, याज्ञिक क्रियाओं, दार्शनिक गवेषणाओं मे पारंगत होकर कुछ क्षत्रिय शासकों ने ब्राह्मणों के आचार्यत्व के एकाधिकार को चुनौति दी तथा अनेक ब्राह्मणों को दीक्षा भी दी। ब्राह्मण श्वेतकेतु के पिता उद्धालक आरुणी पंचाग्नि विद्या के प्रवर्तक क्षत्रिय पांचाल नरेश प्रवाहण जैबलि के पास ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से गए थे। प्रवाहण जैबलि ने स्वयं उद्धालक ऋषि को आसन तथा अर्घ्य प्रदान करके उनका पहले सम्मान किया। तदनन्तर उन्हें अपना अन्तेवासी बनाकर उनकी जिज्ञासाओं का समाधान किया।(18)

कैकय नरेश अश्वपति भी क्षत्रिय थे जिनसे ब्राह्मण ऋषि वैश्वानर ने ज्ञान प्राप्त किया था।(19) यहाँ तक कि प्रसिद्ध विद्वान याज्ञवल्क्य ने भी राजा जनक से दीक्षा प्राप्त की थी। उनके निर्देशन मे आयोजित होने वाली गोष्ठियों मे धर्म–दर्शन पर व्यापक विचार–विमर्श किया जाता था।(20) अपने ज्ञान एवं शास्त्रार्थ से ब्राह्मणों को भी पराजित करने के कारण जनक को राजन्यबन्धु एवं ब्राह्मण भी कहा जाता था। बालाकि गार्ग्य नामक ब्राह्मण ने भी क्षत्रिय शासक अजातशत्रु से ज्ञान लिया था।

ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 01 | January – March 2018

स्पष्ट है कि इस समय वर्णभेद जितनी दृढ़ता से स्थापित हो रहा था वर्ग संघर्ष भी बढ़ता जा रहा था। शतपथ ब्राह्मण मे एक स्थान पर ब्राह्मणों को तो दूसरे स्थान पर क्षत्रियों को श्रेष्ठ बताया गया है। कहा गया है कि इस समय ब्राह्मण की श्रद्धा क्षत्रियों के बाद की जाती थी। समस्त भूमि का स्वामी क्षत्रिय ही था। प्रजा उसी को कर देती थी। यद्यपि इसके बाद भी यह स्वीकार किया गया है कि क्षत्रिय को किसी भी कार्य को करने से पूर्व ब्राह्मण से निर्देश प्राप्त करना पड़ता था। अतः राजा को अपने राज्य मे ब्राह्मणों को अवश्य आश्रय देना चाहिए। स्पष्ट है कि उत्तरवैदिक साहित्य मे यदि ब्राह्मणों के पास आध्यात्मिक सत्ता थी तो क्षत्रियों के पास प्रशासनिक।(21)

इस समय तक आते–आते **वैश्य** वर्ग का समुचित विकास हो चुका था। तुलनात्मक रुप से वैश्य का समाज मे स्थान अपेक्षाकृत निम्न था। ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की तुलना मे इन्हें बहुत निम्न रखा गया था। वैश्यों के लिए ''अनस्य बलिकृत'' शब्दावलि का प्रयोग किया गया है। इससे प्रगट होता है कि वैश्य वर्ग द्विजों मे निम्नतम समझे जाते थे।

वैश्यों का मुख्य कार्य पशुपालन एवं अन्नोत्पादन था।(22) वैश्यों की सर्वप्रमुख आकांक्षा ग्राम–मुखिया बनने की होती थी।(23) याज्ञिक क्रियाओं मे भी वैश्यों का सहयोग आवश्यक होता था।(24) इस सब के बावजूद भी वैश्यों को शूद्रों के समान अपूर्ण माना जाता था। इन्हें क्षत्रियों के अधीन रहना होता था।(25) ब्राह्मण एवं क्षत्रिय की आज्ञापालन इनका धर्म बताया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि इन्हें अपेक्षकृत कम अधिकार प्राप्त होते थे। यद्यपि यह भी सत्य है कि अपनी धन–सम्पदा के कारण राज्य की आय का स्रोत होते थे एवं अपना सम्मान भी रखते थे किन्तु फिर भी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय की तुलना मे निम्न थे।

उत्तरवैदिक साहित्य मे तुलनात्मक दृष्टि से सबसे निम्न स्थिति मे थे– **शूद्र**। सामाजिक ढ़ाँचे मे स्थान चौथा। इनका प्रधान कार्य था परिचारक वृत्ति। पारिवारिक भृत्य के रुप मे भी यह कार्य करता था। इसका उल्लेख ''अन्य का भृत्य'' के रुप मे भी मिलता है।

शूद्र को इच्छानुसार भृत्य रखा जा सकता था तथा निकाला भी जा सकता था। संभवतः इसिलिए कहा गया है कि शूद्र चाहे कितना ही वैभव सम्पन्न अथवा समृद्ध हो, द्विज का भृत्य होने के अतिरिक्त वह कुछ नही कर सकता। अपने से ऊँचे वर्णवालों की सेवा करना तथा परिचारिक वृत्ति करना उसका प्रधान धर्म था।

स्माज मे शूद्रों की स्थिति इतनी हेय थी कि यज्ञ के हव्य के लिए उसके द्वारा लाया गया दूग्ध भी निषिद्ध माना जाता था। यज्ञ के लिए उसे अयोग्य घोषित किया गया था। यहाँ तक कि यज्ञस्थल पर वह जा भी नही सकता था। शूद्र की तुलना असत्य से की जाती थी।

शूद्रा से उत्पन्न किन्तु उच्च वर्णी पिता होने पर भी पुत्र को सम्मान नही मिलता था। ऐतरेय ब्राह्मण के कर्ता आचार्य महिषदास ऐतरेय जो इतरा नामक शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न थे के नाम मे पिता के स्थान पर माता के नाम का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि उन्हें एक अलग पहचान मिली हुई थी जिससे उनका शूद्रा–पुत्र होना स्पष्ट झलकता था। यद्यपि उनका वेदज्ञ होना तथा विख्यात आचार्य बनना उस युग मे वर्ण व्यवस्था के लचलेपन को भी प्रकट करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋग्वैदिक और उत्तरवैदिक काल मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों की स्थितियाँ निरन्तर परिवर्तित होती रहीं।

*****

सन्दर्भ सूची

UGC Approved Journal
© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 01 | January – March 2018

1. ऋग्वेद, 10/90/12, ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कृतः।
   उरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यांशूद्रोअजायत।।
2. वही, 1/164/45,
3. वही, 9/112/3, कारुरहं ततो भिषगुलप्रक्षिणी नना।
   नानाधियो वसूयवोनु गा इव तस्थिम।।
4. वही, 7/64/2,
5. वही, 10/39/14, एतं वा स्तोममश्विनावकर्मा तक्षाम भृगवो न रथम्।
   न्यमृक्षाम योषणा न मर्ये नित्यं सूनुं तनयं दधानाः।।
6. वही, 4/42/1,
7. वही, 7/46/2,
8. वही, 10/90/12, ... पद्भ्यांशूद्रोअजायत।।
9. वही, 8/46/32,
10. अथर्ववेद, 3/5/7,
11. वही, 5/17/19,
12. तैतरीय ब्राह्मण, 1/2/6,
13. तैतरीय संहिता, 1/7/31,
14. अथर्ववेद, 5/19/8/15,
15. ऐतरेय ब्राह्मण, 401, न वा अपुरोहितस्य देवाः अन्नं अदन्ति तस्माद्राजा यज्ञयकाणो
    ब्राह्मणं पुरोदधीत देवाने मे अन्नम् अदन्निति।
16. शतपथ ब्राह्मण, 5/34/20,
17. अथर्ववेद, 7/103, को अस्या वो द्रहोवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियों इच्छन्।
    को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः।।
18. बृहदारण्यकोपनिषद्, 6/2/4, आजमाम गौतमो यत्र प्रवाहणस्य जैबलेरास।
    तस्मा आसनमाहत्योदक माहारयांचकाराय हास्य अर्घ्य चकार।।
19. छान्दोग्योपनिषद्, 5/11/5, तेन्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयांचकार।
20. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/1, ऊँ जनको ह वैदेहो बहुदक्षिणेन् यज्ञेनेजे तत्र ह कुरुपचालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूबुस्तस्य ह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूक कः स्विदेषां ब्राह्मणानामन्चानतम इति स ह गवां सहस्रमवरुरोध दश दश पादा एकैकस्याः श्रंगयोराबद्धा बभूकः।
21. ऐतरेय ब्राह्मण, 8/40/4,
22. तैत्तिरीय संहिता, 7/11/7,
23. वही, 8/12/5,
24. ऐतरेय ब्राह्मण, 1/9,
25. वही, 2/10/1,

———